ज्योतिषीय दृष्टि में पर्यावरण संरक्षण एवं वर्षाः

*डॉ. शालिनी सक्सेना

सारांशः–

ज्योतिषशास्त्र न केवल मानव जीवन का अपितु प्रकृति का भी अध्ययन करता है। संहिता ग्रन्थों में दैवज्ञों ने सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण कर विविध प्रकार के प्राकृति फलादेश किए हैं। ग्रहण कब होगा, भूकम्प कब आयेगा। वर्षा, उत्पात आदि का कथन ज्योतिषीय योगायोगों से किया जाता है। जीवन का अधार जल है और जल वर्षा पर आधारित होती है ज्योतिषशास्त्र में वर्षा के योगायोगों का भी विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। वृष्टि के गर्भाधान से लेकर प्रसव तक की स्थितियों का प्रतिपादन ज्योतिषशास्त्र करता है। यहाँ उन्हीं योगायोगों का विवेचन किया गया है।

जल ही सृष्टि का आधार है। सम्पूर्ण सृष्टि में सर्वाधिक मात्रा जल की है। वैदिक चिन्तन के अनुसार ''अग्निनषोमात्मकं जगत्'' कहा गया है। इसके अनुसार ब्रह्माण्ड में मुख्यतः अग्नि और सोम अर्थात् जल की ही सत्ता है। ये अग्नि और जल ही विभिन्न ऋतुओं का निर्माण करते है, जो धरती के पर्यावरण को सुरक्षित बनाये रखने के लिए आवश्यक है। अग्नि का मूल स्त्रोत सूर्य रहा है और वृष्टि जल का मूलाधार है। आदित्य मे आपः की आहुति दी जाती है। इस आपः रूप हवि से आदित्य सदा प्रज्वलित रहता है। वायुरूप से अवस्थित वह आपः निरन्तर ऊष्मा उत्पन्न करता है। सूर्य से उत्पन्न वायुरूपिणी शक्ति ही वर्षा की प्रेरक है। सूर्य की किरणों में अग्निकरण विद्यमान है, जो जलकणों को अवशाषित करते है। वायु उन जलों को वाष्परूप में एकत्रित करता है। यह धर्म है अर्थात् पदार्थ का बाष्पीकृत रूप ही धर्म कहा गया है। यज्ञ में आहुति द्वारा वृष्टिकर्ता हरितवर्णी धर्मतत्त्व पुनः–पुनः शब्द करता है। वह धर्म तत्त्व जलों का धारक और सूर्य सदृश तेजस्वी है। जब किसी प्रदेश में जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न वर्षा की न्यूनता होती है तो उसका उपचार याग द्वारा सम्भव है।

पर्यावरण सन्तुलन में जल का महत्त्वपूर्ण योगदान है और जल वर्षा पर निर्भर है। वर्षा ऋतु की महत्ता को देखते हुए वैदिक काल से लेकर आधुनिक समय तक वर्षा ऋतु को संवत्सर का आधार कहा गया है। श्रेष्ठ संवत्सर श्रेष्ठ वर्षा पर ही निर्भर करता है। भारतीय मनीषा ने वर्षा के पूर्वानुमान के लिए शास्त्रीय आधारों का चिन्तन कर जो अनुभव किया वे अनुभव ही भारतीय वृष्टिविज्ञान के आधार बने।

भारत कृषिप्रधान देश होने के कारण पूर्णतया वर्षा पर निर्भर करता है। नदियाँ भी वर्षा पर निर्भर करती है। यही कारण है कि वैदिक विज्ञान एवं ज्योतिषशास्त्र वर्ष के प्राकृतिक एवं खगोलीय योगायोगों के आधार पर वर्षा का पूर्वानुमान करता है। ज्योतिषीय नवग्रहों में सर्वाधिक प्रभावित करने वाले ग्रह सूर्य एवं चन्द्र है। सारे ब्रह्माण्ड की गतिविधियाँ सूर्य पर निर्भर करती है। वैदिक काल से ही ऋषि सूर्य के महत्त्व से परिचित थे। उन्होनें जगत् की आत्मा के रूप में सूर्य की उपासना की है।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरूणस्याग्नेः।

आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषच।।

सूर्य की स्थिति में सूक्ष्मतर अंतर या परिवर्तन भी दिग्दाह, उल्कापात, भूकम्प, अतिवृष्टि, अकाल आदि का कारण बनता है। सूर्य का विविध राशियों में भ्रमण विविध ऋतुओं का सूचक है। सूर्य की सायन मीन राशि में प्रवेश (चैत्र एवं वैशाख) वसन्त ऋतु सूर्य का सायन वृष राशि में प्रवेश (ज्येष्ठ एवं आषाढ़) ग्रीष्म ऋतु, सूर्य का सायन कर्क में प्रवेश (श्रावण एवं भाद्रपद) वर्षा ऋतु, सूर्य का सायन कन्या में प्रवेश (आश्विन एवं कार्तिक) शरद् ऋतु, सूर्य का सायन वृश्चिक राशि में प्रवेश (मार्गशीर्ष एवं पौष) हेमन्त ऋतु, सूर्य का सायन मकर राशि में प्रवेश (माघ एवं काल्गुन) शिशिर ऋतु कहलाता है। इस प्रकार ऋतु विज्ञान का मूलाधार सूर्य है।

आज भी आषाढ़ी पूर्णिमा को वायु के प्रवाह के आधार पर वर्षा के पूर्वानुमान करने परम्परा प्रचलित है। आषाढ़ी पूर्णिमा तो वर्षा के पूर्वानुमान का मात्र एक हेतु है। वस्तुतः सम्पूर्ण वर्ष के योगायोगों का मूल्यांकन कर ही वर्षा की सही भविष्यवाणी की जा सकती है। इसी कारण प्राचीनकाल में वर्षा के गर्भधारण से लेकर प्रसव तक की प्राकृतिक एवं खगोलीय स्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता था, जिससे आगामी वर्षा का सही–सही आकलन किया जा सके। यहाँ वर्षा की गर्भकालीन स्थितियों एवं उसके आधार पर प्रसव का विवेचन ही अभीष्ट है, क्योंकि परिपुष्ट गर्भ ही प्रसव का हेतु बनता है।

सिद्धसेन आदि आचार्यों के अनुसार कार्तिक पूर्णिमा के बाद गर्भ के दिन होते हैं–

शुक्लपक्षमतिक्रम्य कार्तिकस्य विचारयेत्।

गर्भाणां सम्भवं सम्यक् सस्यसम्पत्तिकारणम्।।

गर्गादि आचार्यो के अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से जब चन्द्रमा पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में स्थित हो उस समय गर्भलक्षण जानना चाहिए। यथा–

शुक्लादौ मार्गशीर्षस्य पूर्वाषाढ़ाव्यवस्थित।

निशाकरे तु गर्भाणां तत्रादौ लक्षणं वदेत्।।

कश्यप के अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा को पूर्वाषाढा नक्षत्र होने पर गर्भधारण होता है। जिस पक्ष में गर्भधारण होता है, उसके विपरीत पक्ष में प्रसव होता है। यदि शुक्लपक्ष में गर्भ धारण हुआ है तो कृष्णपक्ष में और यदि कृष्णपक्ष में गर्भधारण हुआ है तो शुक्लपक्ष में प्रसव होता है। इसी प्रकार यदि दिन में गर्भ धारण हुआ है तो रात्रि में और रात्रि में गर्भधारण हुआ है तो दिन में प्रसव होता है। वृहत्संहिता के अनुसार चन्द्रमा क जिस नक्षत्र में स्थित होने से गर्भ स्थिति होती है, चन्द्र के कारण 195वें दिन में उसका प्रसव होता है। यथा–

यन्नक्षत्रमुपगते गर्भचन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात्।

पंचनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति।।

मार्गशीर्ष शुक्ल और पौष शुक्ल पक्ष में स्थित गर्भ मन्द फल देने वाला होता है। यदि पौष कृष्णपक्ष में गर्भ हो तो श्रावण शुक्लपक्ष में, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष मे गर्भ हो तो श्रावण कृष्णपक्ष में, माघ कृष्णपक्ष में गर्भ हो तो भाद्रपद शुक्लपक्ष में, फाल्गुन शुक्लपक्ष में गर्भ हो तो भाद्रपद कृष्णपक्ष में, फाल्गुन कृष्णपक्ष में गर्भ हो तो आश्विन शुक्ल पक्ष में, चैत्र शुक्लपक्ष में गर्भ हो तो अश्विन कृष्णपक्ष में और वैशाखकृष्ण पक्ष में गर्भ हो तो कार्तिक शुक्लपक्ष में प्रसव होता है। (बृहत्संहिता 21/9–12)। गर्ग के अनुसार–

माघेन श्रावणं विन्द्यान्नभस्य फाल्गुनेन तु।

चैत्रेणाश्रयुजं प्राहुर्वैशाखेन तु कार्तिकम्।।

शुक्लपक्षेण कृष्णं तु कृष्णपक्षेण चेतरम्।

रात्र्यह्नेश्रच विपर्यासं कार्य काले विनिश्रच्यम्।।

इसी प्रकार गर्भकार में मेघ जिस दिशा में होता है, प्रसवकाल में उसके विपरीत दिशा में होते है। इसी प्रकार वायु भी विपरीत दिशा में होते है। बृहत्नारदीयपुराणा में विभिन्न ग्रहों एवं शकुनों से भावी वृष्टि की संकल्पना की गयी है। आर्द्रा नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश के समय यदि शुक्लपक्ष हो, चन्द्रमा जलीय राशि में अथवा केन्द्र में स्थित होकर शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो तो प्रभूत वृष्टि होती है। सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश के समय चन्द्रमा और शुक्र दोनों की स्थिति देखकर तारतम्य से फल समझना चाहिये। यथा–

वर्षप्रवेशे शशिनि जलराशिगतेऽपि वा।

केन्द्रगे वा शुक्लपक्षे चातिवृष्टिः शुभेक्षिते।।

वर्षाकाल में आर्द्रा से स्वाति तक सूर्य के रहने पर चन्द्रमा यदि शुक्र से सप्तमस्थान में अथवा शनि से पंचम, नवम तथा सप्तम स्थान में हो, उस पर शुक्र की दृष्टि हो तो अवश्य वृष्टि होती है। यदि बुध और शुक्र एक राशि में हो तो तत्काल वर्षा होती है, किन्तु इनके मध्य सूर्य के आने पर वृष्टि का अभाव होता है। यदि सूर्य पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में प्रवेश के समय मेघ से आच्छन्न हो तो आर्द्रा से मूल नक्षत्र तक प्रतिदिन वर्षा होती है।

महषि वाल्मीकि ने वृष्टि को ही मुख्य ऋतु माना हैं। वर्षा से पूर्व सूर्य अपनी रश्मियों से पार्थिव जल को अवशोषित कर दक्षिण में संचरण करते है। वर्षा आगमन के सूचक मेंढ़क, चातक तथा मयूर अपने लक्षणों को प्रकट करते है। वृष्टि प्राबल्य से निर्मल जल भी श्वेत, रक्त एवं भस्मयुक्त सर्पों की उपमा को ग्रहण करता है–

अपास्य ही रसान् भौमांस्प्त्वा च जगदंशुभिः।

परेताचरितां भीमां रविराचते दिशम्।।

सूर्य समुद्र के जल को पीकर कार्तिक आदि नौ मासों तक धारण किये हुए गर्भ के रूप में जलरूपी रसायन को जन्म देता है। आधनिक विज्ञान भी वृष्टि गर्भ एवं सूर्य द्वारा ऋतुओं के निर्धारण प्रक्रिया को स्वीकार करता है। सूर्य ही सभी ऋतुओं का जनक है, वस्तुतः वह पृथ्वी से सोम को ग्रहण कर नौ मास में उसे शुद्ध करके विरेचित करते है, यही वृष्टि है–

नवमासधृतं गर्भे भास्करस्य गभस्तिभिः।

पीत्वा रसं समुद्रासं घौः प्रसूते रसायनम्।। (रामायण किष्किन्धकाण्ड 28/3)

वृष्टि गर्भ की पुष्टि करने वाले मेघ, मध्य में रक्तवर्णी तथा किनारों मे श्वेत एवं स्निग्ध होते है।

ज्योतिष में सप्त नाड़ी चक्र से भी वर्षा का विचार किया जाता है। ये सात नाड़ियाँ है– चंण्ड, वायु, अग्नि, सौम्य, नीर, जल एवं अमृत है। शनि, सूर्य, मंगल, गुरू, शुक्र, बुध एवं चन्द्रमा क्रमशः इसके स्वामी है। बीच की घडी सौम्य है। उसके दक्षिण उत्तर तीन तीन नाड़ियाँ है। जिस समय एक नाड़ी में दो से अधिक शुभ या पापग्रह हो, तो चण्ड नाड़ी मे अर्थात् झंझा, तूफान, वायु वेगादि होता है। वायु नाड़ी में तेज होती है लेकिन तूफान नही होता। अग्नि

नाड़ी में बिजली गिरना, अधिक गर्मी या आग लगना आदि फल होते है। सौम्यनाड़ी में कई ग्रह हो तो गर्मी व जलवर्षा मध्यम अथार्त् सन्तुलित हेाती है। नीर नाड़ी में बादलों का घिरना, जल नाड़ी में वर्षा कम एवं अमृत नाड़ी में अत्यधिक वर्षा होती है।

यदि नाड़ी मे उस नाड़ी का स्वामी अकेला भी हो तो भी पूर्वोक्त फल देने मे समर्थ है। यदि उसके साथ अन्य भी रहे तो फिर अधिक फल समझना चाहिये। मंगल की यह विशेषता है कि वह जिस नाड़ी के नक्षत्रों में रहे, उसी नाड़ी के स्वामी का फल देगा। सूर्य के आर्द्रा प्रवेश के बाद जब भी कई शुभ व पापग्रहों का चन्द्रमा के साथ एक नाड़ी में योग हो, उस दिन अच्छी वर्षा होती है।

जिस दिन एक ही नक्षत्र में चन्द्र सहित कई ग्रह हो तो उस दिन अतिवृष्टि होती है। चन्द्रमा जल नाड़ी में जब शुभाशुभ ग्रहों से एक नाड़ी में स्थिति हो तो दो ग्रहों के योग में आधे दिन, चार ग्रहों से एक दिन, पाँच ग्रहों से पाँच दिन तक वर्षा होती है। यदि अमृत, जल व नीर इन तीन नाड़ियों में सभी ग्रह स्थित हो तो एक सप्ताह से अधिक तक वर्षा योग होती है।

इस प्रकार प्राचीन शास्त्रों मे वर्षा के विविध योगायोगों का विवेचन किया गया है। इस योगों का सही अध्ययन अतिवृष्टि मे प्राप्त जल का सही उपयोग कर सकते है तो अनावृष्टि या अल्पवृष्टि के समय उपलब्ध जल का उपयोग कर जल बचा सकते है। अतः प्रचीन शास्त्रों में विद्यमान सूत्रों का उपयोग कर वर्षाजल का समुचित उपयोग पर्यावरण को सुरक्षित रखने मे किया जा सकता है।

***प्रोफेसर**
राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय
मनोहरपुर (राज.)